भारत में
इस्लाम की दावत
की अहमियत और उसके तक़ाज़े

मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी

अनुवाद

मुहम्मद अली शाह शुएब

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

शुरू अल्लाह के नाम से जो बे-इन्तिहा मेहरबान और रहम करनेवाला है।

भारत में इस्लाम की दावत की अहमियत और उसके तक़ाज़े

13, 14 मार्च, 1995 ई॰ को उमराबाद के जामिआ दारुस्सलाम में दो दिन के टीचर्स ट्रेनिंग कैम्प में मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी ने "भारत में दावते-इस्लामी की ज़रूरत व अहमियत और उसके तक़ाज़े" के विषय पर एक तक़रीर की थी जिसे मौलाना की नज़रसानी के बाद उर्दू में छापा गया। इसकी अहमियत को देखते हुए इसे हिन्दी पाठकों के लिए पेश किया जा रहा है। इस तक़रीर में जो आँकड़ दिए गए हैं वे 1995 ई॰ के हैं।

हमारा देश एक लम्बा-चौड़ा देश है। यहाँ चीन के बाद दुनिया की सबसे बड़ी आबादी रहती और बसती है। यह आबादी लगभग एक अरब पहुँच रही है। अगर दुनिया की मौजूदा आबादी, जैसा कि अन्दाज़ा है, सात अरब मान ली जाए तो दुनिया का हर सातवाँ आदमी हमारे देश भारत में रहता है। यहाँ के बड़े-बड़े शहरों को अगर देखा जाए तो हर शहर एक देश के बराबर नज़र आएगा। पिछली जनगणना में मुम्बई शहर की आबादी एक करोड़ दस लाख और कलकत्ता की आबादी एक करोड़ थी। दिल्ली की आबादी अस्सी-पिचासी लाख थी। हम जानते हैं कि इतनी आबादी के कितने ही देश पाए जाते हैं। यूँ कहना चाहिए कि हमारा एक-एक शहर एक-एक देश के बराबर हो गया है। भारत में मुसलमानों की आबादी ख़ुद सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़ लगभग ग्यारह करोड़ है। मुसलमानों का एहसास है कि ये आँकड़े ठीक नहीं हैं। इन आँकड़ों को बढ़ा भी सकते हैं। अगर इन्हें पन्द्रह करोड़ मान लिया जाए तो मुसलमानों की इतनी बड़ी आबादीवाले देश दुनिया के नक़्शे पर

कुछ ही हैं। फ़ितरी तौर पर इतनी बड़ी आबादी की बहुत-सी समस्याएँ और ज़रूरतें होती हैं, जिन्हें नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। बल्कि इन समस्याओं और ज़रूरतों को लाज़िमी तौर पर सामने रखना होगा।

दीन ख़ैरख़ाही है

दीनी और अख़लाक़ी लिहाज़ से यह उम्मत बड़ी कमज़ोरियों की शिकार है। इसके अक़ीदे भी कमज़ोर हैं और अख़लाक़ भी। इसके मामले भी ख़ालिस इस्लामी नहीं हैं। यूँ कहना चाहिए कि हर पहलू से यह उम्मत इस्लामी मेयार से नीचे है। इसलिए इस अज़ीम और बड़ी उम्मत के बारे में हम फ़ितरी तौर पर सोचते रहते हैं, और सोचते भी रहना चाहिए। यह हमारी दीनी ज़िम्मेदारी है। इसे हदीस शरीफ़ में उम्मत के साथ नसीहत और ख़ैरख़ाही कहा गया है। मुस्लिम शरीफ़ की एक हदीस में हज़रत तमीम दारी *(रज़ि.)* रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"दीन ख़ैरख़ाही है।"

सहाबा *(रज़ि.)* ने पूछा कि ख़ैरख़ाही किसके साथ होगी? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "अल्लाह के साथ, उसकी किताब के साथ, उसके रसूल के साथ, मुसलमानों के सरबराहों और उनके आम लोगों के साथ।"

यह, मानो एक बड़ा काम है जो यहाँ होना चाहिए। हम इसके लिए फ़िक्र भी करते हैं और किसी न किसी दर्जे में यह काम अंजाम भी पा रहा है। इसे और बेहतर तरीक़े से अंजाम पाना चाहिए।

हमारी कोताही

हमारे देश भारत की लगभग अस्सी करोड़ आबादी ग़ैर मुस्लिम है। वह मुसलमानों के साथ रहते हुए भी इस्लाम से बड़ी हद तक बेगाना और अनजान है। इस्लाम के बारे में उसके अन्दर

तरह-तरह की ग़लत फ़हमियाँ पाई जाती हैं, बल्कि इस्लाम से उसे एक तरह की नफ़रत है। इसकी बड़ी गहरी वजहें हैं। हमें खुले दिल से यह मान लेना चाहिए कि इनका ताल्लुक़ हमारी कोताही, बेअमली और ग़लत रवैये से भी है। इसके साथ वतन की आज़ादी से पहले अंग्रेज़ों की और आज़ादी के बाद बहुत-सी फ़िरक़ापरस्त तंज़ीमों की मुसलसल कोशिश रही है कि यहाँ ग़ैर-मुस्लिम आबादी मुसलमानों से दूर रहे और मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के दर्मियान जो इख़्तिलाफ़ पाए जाते हैं वे बाक़ी रहें और नित नए इख़्तिलाफ़ पैदा किए जाते रहें। यह हमारी कोताही या कमज़ोरी रही है कि हमने इस बात की कोशिश नहीं की कि हम देशवासियों से क़रीब हों, उनको समझें और उनके शकों और शुब्हों को दूर करें। इस काम में कुछ रुकावटें बयान की जा सकती हैं, और हक़ीक़त में वे रुकावटें हैं, लेकिन एक बड़ी सहूलत और आसानी भी हमें हासिल है। वह यह कि हम यहाँ की बड़ी आबादी, यानी ग़ैर-मुस्लिमों के दर्मियान फैले हुए हैं। हमारे लगभग हर गाँव या बस्ती में मुसलमानों के साथ ग़ैर-मुस्लिम भी मौजूद हैं। यू॰ पी॰, बिहार और बंगाल वग़ैरा में ख़ालिस मुसलमानों की आबादीवाले ऐसे इलाक़े भी हैं जिनके आस-पास की आबादियाँ ग़ैर-मुस्लिमों की होंगी, लेकिन इसके बावजूद अजीब बात यह है कि मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के दर्मियान एक दीवार खड़ी हुई है। ताल्लुक़ात और मेल-जोल में एक परदा है कि साथ रहते हुए भी एक तरह की अजनबीयत और दूरी है। वे यह तक नहीं जानते कि नमाज़ की हमारे यहाँ क्या अहमियत है और उसकी पाबन्दी को हम क्यों ज़रूरी समझते हैं?

यह कैसा परदा है?

एक बार का वाक़िआ है कि जब हम इमरजेंसी के दौरान अलीगढ़ जेल में थे तो हमारे साथ दूसरी बहुत-सी पार्टियों के ग़ैर-मुस्लिम लोग भी थे। उनमें से एक साहब अलीगढ़ के ही किसी कॉलेज में इतिहास के लेक्चरर थे। इस्लामी इतिहास पर भी उन्हें

अच्छी-ख़ासी जानकारी थी। वे बड़ी हैरत से हमें दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ते हुए देखते थे। एक बार बातचीत के दौरान में उन्होंने कहा कि यहाँ आप लोगों को फ़ुरसत है तो आप हर वक़्त नमाज़ पढ़ते रहते हैं। क्या आप लोग अपनी आम ज़िन्दगी में भी इसी तरह नमाज़ पढ़ते हैं। जब हम लोगों ने बताया कि हम लोग हर रोज़, हर मौसम में और हर तरह के हालात में इसी तरह पाबन्दी के साथ नमाज़ पढ़ते हैं और इसमें जानबूझकर कोताही नहीं करते, तो उनकी हैरत और ज़्यादा बढ़ गई। उन्होंने कहा कि आप पढ़े लिखे लोग हैं, किसी का ताल्लुक़ यूनिवर्सिटी से है, कोई लिखने-पढ़ने का काम करता है, कोई कारोबारी है और आपकी घरेलू ज़िम्मेदारियाँ भी हैं। इस सबके साथ आप पाँच वक़्त की नमाज़ के लिए कैसे वक़्त निकाल लेते हैं और दिन का इतना वक़्त नमाज़ में लगाने के बाद और दूसरी ज़िम्मेदारियाँ किस तरह अदा करते हैं? उन साहब के ज़ेहन में यह बात थी कि जिस तरह मन्दिर या गिरजा में इबादत के लिए ख़ास पुजारी होते हैं इसी तरह मस्जिद में मुअज़्ज़िन होता है, वह पाँच वक़्त अज़ान देता है और जिसे कोई काम नहीं होता या जिसे फ़ुर्सत मिल जाती है वह मस्जिद चला जाता है। जिस तरह इतवार को चर्च में बड़ा मजमा होता है, उसी तरह जुमा को मुसलमान बड़ी तादाद में जमा हो जाते हैं।

जब लेक्चरर साहब की बात ख़त्म हुई तो मैंने अपने साथियों से कहा कि यह कितने अफ़सोस और सदमे की बात है कि एक हज़ार सालों के लम्बे पीरियड में हम इस देश की बड़ी तादाद को यह न बता सके कि हम पाँच वक़्त की नमाज़ के पाबन्द हैं और इस पाबन्दी के साथ अपनी ज़िम्मेदारियाँ दूसरों से बेहतर तरीक़े से अदा कर सकते हैं और अदा करते हैं। यह कितनी बड़ी दूरी और कितना बड़ा परदा है जो हमारे और इन लोगों के दर्मियान पड़ा हुआ है।

यह दीवार कब तक रहेगी?

एक मौक़े पर एक जलसे में, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही मौजूद थे, मैंने ग़ैर-मुस्लिम दोस्तों से ख़िताब करते हुए कहा कि हम लोग (यानी मुसलमान) यहाँ लगभग एक हज़ार साल के एक लम्बे इतिहास के साथ रह रहे हैं लेकिन हमें नहीं मालूम कि आप लोग होली क्यों मनाते हैं? दीवाली क्यों मनाते हैं? आपके और भी त्यौहार हैं, लेकिन हम नहीं जानते कि इनके पीछे क्या तसव्वुरात और धारणाएँ हैं? इसी तरह आपको नहीं मालूम कि हमारी ईद क्या है? बक़रईद क्या है? ख़ास मौक़ों पर यह ख़ुशी क्यों मनाई जाती है? इनके पीछे क्या फ़लसफ़ा है? मैंने कहा कि यह बात तो मैंने आपके सामने हिम्मत करके कह दी है लेकिन अगर मैं यूरोप, अमेरिका या किसी दूसरे देश में जाऊँ और वहाँ जाकर कहूँ कि भारत में हम लोग एक हज़ार साल से साथ-साथ रह रहे हैं, लेकिन हमें नहीं मालूम कि हमारे ग़ैर-मुस्लिम भाई अपने त्यौहार क्यों मनाते हैं? और वे भी यह नहीं जानते हैं कि हमारी ईद क्या है और उसको क्यों मनाया जाता है? तो मेरी इस बात को शायद वे मज़ाक़ समझेंगे या मुझे पागल और ख़ब्ती कहेंगे। इसलिए कि दुनिया का क़ायदा यह है कि किसी देश में बाहर से लोग आते हैं, वे वहाँ की तहज़ीब, तमद्दुन और मुआशरत को कुछ ही महीनों या दो-एक साल में पढ़ लेते हैं। वे यह समझ ही नहीं सकते कि एक हज़ार सालों से जहाँ एक क़ौम रह रही है वह एक-दूसरे के त्यौहारों तक को नहीं जानती होगी। यह एक मज़बूत दीवार है जो दोनों क़ौमों के दर्मियान मौजूद है। मालूम नहीं यह दीवार कब तक रहेगी? यहाँ के ग़ैर-मुस्लिम हमारे दुख-दर्द और ख़ुशी को नहीं जानते और न हम उनके रंज और राहत को जानते हैं। न वे हमारी मुश्किलों से बाख़बर हैं और न हम उनकी समस्याओं से। यह सूरते-हाल बहुत ही हैरत-अंगेज़ भी है और ताज्जुब की भी। और सही बात यह है कि यह बात तवज्जोह चाहती है।

दीन सबके लिए

ताल्लुक़ात की जो क़ुरबत होनी चाहिए थी उसके ख़त्म होने की वजह से हम जब भी सोचते हैं अपने ही बारे में सोचते हैं। यक़ीनन हर आदमी को इसका हक़ है कि पहले वह अपने घर को देखे। लेकिन सवाल यह है कि अल्लाह ने इस दीन को सारी दुनिया के लिए भेजा है और हम फ़ख़्र के साथ कहते हैं और सही कहते हैं, इसमें कोई मुबालग़ा या अतिशयोक्ति भी नहीं है कि क़ुरआन सारी दुनिया के लिए है। वह सारे इनसानों के लिए हिदायत है और इसको लानेवाली ज़ात, मुहम्मद *(सल्ल.)* पूरी दुनिया के लिए रहमत हैं। लेकिन मौजूदा दुनिया को, या यूँ कहिए कि हमारे देश को, अभी तक यह मालूम नहीं है कि आप *(सल्ल.)* की बरकतवाली ज़ात पूरी इनसानियत के लिए हर पहलू से रहमत है। आप *(सल्ल.)* की तालीमात में इनसानों के दुख-दर्द की दवा है। दुनिया और आख़िरत की कामयाबी इसी में है। सोचना चाहिए कि जो दीन सारी दुनिया के लिए था, हमने उसे अपनी हद तक महदूद कर रखा है। हमने अपने दायरे से बाहर उसके परिचय की या उसकी पहचान बनाने की कोशिश नहीं की। इससे बड़ी कोताही और क्या हो सकती है?

दीन की तबलीग़ फ़र्ज़ है

इसमें शक नहीं कि हम अपनी ज़ात से ग़ाफ़िल नहीं हो सकते। हमें अपनी इस्लाह की फ़िक्र करनी चाहिए और अपनी कमियों को दूर करना चाहिए, हमें अपने घर और ख़ानदान की तरफ़ तवज्जोह करनी चाहिए। मुसलमानों की इस्लाह और सुधार से भी हम ग़फ़लत नहीं बरत सकते। लेकिन इसके साथ हमपर तबलीग़े-दीन का फ़र्ज़ भी आता है। हमें सारी दुनिया में अल्लाह का दीन पहुँचाना है। इनमें से हर काम की अहमियत है। इनमें से किसी को न तो नज़रअन्दाज़ किया जा सकता है और न इससे ग़फ़लत बरती जा सकती है। इनमें कोई ख़ास तरतीब नहीं है कि

इसी तरतीब से ये काम अंजाम दिए जाएँ और एक मरहला तय हो जाए तो दूसरा मरहला शुरू किया जाए। ये सब काम हमारी तवज्जोह चाहते हैं। इनमें से हर एक के अपने तक़ाज़े हैं और इन सब ही तक़ाज़ों को पूरा करना चाहिए। मिसाल के तौर पर क़ुरआन मजीद का हुक्म है–

"बचाओ अपने घरवालों को जहन्नम की आग से।"

(क़ुरआन, 66:6)

इस आयत में कहा गया है कि अपने-आपको भी और अपने बीवी-बच्चों को भी जहन्नम की आग से बचाओ। इसका मतलब यह नहीं है कि पहले पूरी तरह अपनी इस्लाह कर लो और हर पहलू से कामिल और मुकम्मल हो जाओ तब बीवी-बच्चों की तरफ़ तवज्जोह करो, बल्कि ये दोनों अमल एक साथ अंजाम देने होंगे। अगर आदमी यह सोचे कि पहले मैं पूरी तरह मुकम्मल हो जाऊँ तब अपने बीवी-बच्चों की फ़िक्र करूँ तो शायद इस तरफ़ तवज्जोह हो ही नहीं पाएगी। इसी लिए क़ुरआन मजीद में नबी *(सल्ल.)* से कहा गया कि–

"अपने क़रीबी रिश्तेदारों को डराओ।"

(क़ुरआन, 26:214)

इसका एक पहलू यह है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के ख़ानदान को सरदारी का मक़ाम हासिल था, इस वजह से इस तरफ़ ख़ास तवज्जोह की हिदायत थी। लेकिन इसका दूसरा पहलू यह है कि इससे ख़ानदान की अहमियत ख़ुद ज़ाहिर होती है। इसे नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। ख़ानदान की अहमियत के बावजूद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से क़ुरआन मजीद में यह भी कहा गया कि–

"अपनी क़ौम के लोगों को डराओ।" (क़ुरआन, 42:7)

यानी यह क़ुरआन ख़ुदा ने पैग़म्बर मुहम्मद *(सल्ल.)* पर इसलिए नाज़िल किया है कि आप इसके ज़रीए से मक्का और आस-पास की आबादी को अल्लाह के अज़ाब से डराएँ। इस तरह जहाँ ख़ानदानवालों को अल्लाह के अज़ाब से डराने का हुक्म दिया गया वहीं आम लोगों को डराने की भी हिदायत की गई। इसका साफ़ मतलब यह है कि दूर और नज़दीक के सभी ख़ुदा के बन्दों के दर्मियान यह फ़र्ज़ अंजाम देना है।

नबी *(सल्ल.)* का पैग़ाम सारी दुनिया के लिए है

ऊपर की आयत में इस बात की तरफ़ भी इशारा है कि इस्लाम की यह दावत सिर्फ़ आपके ख़ानदान और क़बीले या मक्का की वादियों तक महदूद नहीं रहेगी, बल्कि यह एक आम दावत है जिसे सारी दुनिया तक पहुँचना है, और वह पहुँचेगी। यही हक़ीक़त सूरा-7, अल-आराफ़ में इस तरह बयान हुई है कि आप *(सल्ल.)* की रिसालत और आपका पैग़ाम सारी दुनिया के लिए है।

> "ऐ मुहम्मद, कह दो कि ऐ इनसानो! मैं तुम सबकी तरफ़ उस ख़ुदा का पैग़म्बर हूँ जो ज़मीन और आसमानों की बादशाही का मालिक है, उसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है। वही ज़िन्दगी बख़्शता है और वही मौत देता है। तो ईमान लाओ अल्लाह और उसके भेजे हुए उम्मी नबी पर जो अल्लाह और उसके हुक्मों को मानता है, और पैरवी इख़्तियार करो उसकी। उम्मीद है कि तुम सीधा रास्ता पाओगे।" (क़ुरआन, 7:158)

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने अपनी जो बहुत-सी ख़ुसूसियतें बयान की हैं हदीस में उनकी तफ़सील मौजूद है। उनमें एक ख़ुसूसियत, नबी को हासिल थी, वह यह है–

"मुझे तमाम इनसानों के लिए भेजा गया है।"

(हदीस)

यह हैसियत किसी दूसरे पैग़म्बर को हासिल नहीं थी

मक्का में दावत का काम भी जारी था और जो लोग इस दावत को क़बूल कर रहे थे उनकी इस्लाह और तरबीयत भी हो रही थी। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* को इस बात की सख़्त ताकीद थी कि ईमानवालों के साथ नर्मी और मुहब्बत का रवैया जारी रहे। उनपर आपकी इनायतों में फ़र्क़ न आने पाए और उनकी इस्लाह से आप ग़ाफ़िल न हों। इस तरफ़ से कभी ज़रा-सी नज़र हटी तो फ़ौरन तवज्जोह दिलाई गई। सूरा-18, अल-कहफ़ में दोनों बातों की तरफ़ एक साथ तवज्जोह दिलाई गई है। फ़रमाया है—

> "ऐ नबी! तुम्हारे रब की किताब में से जो कुछ तुमपर वह्य किया गया है उसे (ज्यों का त्यों) सुना दो। कोई इसके फ़रमानों को बदल देने का हक़ नहीं रखता। (और अगर तुम किसी की ख़ातिर इसमें फेर-बदल कर दोगे तो) उससे बचकर भागने के लिए पनाह की कोई जगह न पाओगे। और अपने दिल को उन लोगों के साथ रहने पर मुत्मइन करो जो अपने रब की ख़ुशी के तलबगार बनकर सुबह और शाम उसे पुकारते हैं, और उनसे हरगिज़ निगाह न फेरो। क्या तुम दुनिया की ज़ीनत पसन्द करते हो? किसी ऐसे आदमी की इताअत न करो जिसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफ़िल कर दिया और जिसने अपने नफ़्स की पैरवी इख़्तियार कर ली है और जिसका तरीक़े-कार इफ़रात-तफ़रीत पर मबनी (अर्थात् असन्तुलित) है।"

(क़ुरआन, 18:27-28)

इन आयतों में पहले किताब की तिलावत की हिदायत की गई है। फिर उस ख़ास तवज्जोह का ज़िक्र किया गया है जो सहाबा की तरफ़ होनी चाहिए, जो इख़लास में डूबे हुए थे, जिनके दिलों में ख़ुदा की ख़ुशी चाहने के सिवा दूसरी कोई चाहत नहीं थी और सिर्फ़ उसकी ख़ुशी के लिए जान दे रहे थे। उनकी तरफ़ से कैसे नज़र फेरी जा सकती है? उनके मुक़ाबले में वक़्त के सरमायादारों की, बादशाहों की और इक़्तिदार पर क़ाबिज़ लोगों की हैसियत क्या है कि अल्लाह की तरफ़ बुलानेवाला आदमी इन ख़ुदापरस्तों को नज़र-अन्दाज़ करके उसके बाग़ियों की तरफ़ तवज्जोह करने लगे? इन आयतों में किताब की तिलावत का जो हुक्म दिया गया है वह दीन की तबलीग़ की बुनियाद है। दीन की दावत की सारी तफ़सीलें इसी के अन्दर आती हैं। किताब की तिलावत नबी *(सल्ल.)* पर फ़र्ज़ थी। नतीजों की परवाह न करते हुए आप *(सल्ल.)* को हुक्म था कि इस किताब की तिलावत करें। क़ुरआन मजीद में है—

> "ऐ नबी, इनसे कहो कि मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं इस शहर (मक्का) के रब की इबादत करूँ जिसने इसे एहतिराम के क़ाबिल क़रार दिया है और हर चीज़ जिसकी है, और मुझे हुक्म दिया गया है मैं फ़रमाँबरदारों में शामिल हो जाऊँ और यह कि क़ुरआन पढ़कर सुनाऊँ।" इसके बाद जो आदमी हिदायत हासिल करे तो अपने ही फ़ायदे के लिए हिदायत हासिल करता है और जो ज़लालत या गुमराही इख़्तियार करे तो (इसमें उसी का नुक़सान है) तुम कहो कि "मैं तो बस डरानेवाला हूँ।"
>
> (क़ुरआन, 27:91-92)

इन आयतों में ख़ुदा की इबादत, उसके सामने सर झुका देने और मुस्लिम और फ़रमाँबरदार बन जाने का हुक्म है। इसका ताल्लुक़ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की ज़ात से है। दूसरों के दर्मियान

आप *(सल्ल.)* को जो फ़र्ज़ अंजाम देना है उसे किताब की तिलावत कहा गया है। यानी यह कि ख़ुदा के बन्दों को आप ख़ुदा की यह किताब पढ़कर सुनाएँ। इसके सुनने के बाद जो सीधा रास्ता इख़्तियार करे उसका फ़ायदा उसी को पहुँचेगा। दुनिया और आख़िरत में वह कामयाब होगा, और जो गुमराही में पड़ा रहे तो अपना ही नुक़सान करेगा। किसी दूसरे का कुछ नहीं बिगाड़ेगा। आप *(सल्ल.)* की दावत और तबलीग़ की ज़िम्मेदारी ख़त्म हो जाएगी।

दावत के काम से ग़फ़लत

क़ुरआन मजीद ने उम्मत से ताल्लुक़ और रब्त रखने, उससे बे-रुख़ी न बरतने और उसकी इस्लाह और तरबियत का भी हुक्म दिया है और यह ज़िम्मेदारी भी डाली है कि क़ुरआन मजीद पढ़कर सुनाया जाए, उसकी तबलीग़ की जाए और उसके पैग़ाम को आम किया जाए। ये दो तय किए हुए फ़र्ज़ हैं। इनमें से किसी से भी ग़फ़लत नहीं बरती जा सकती। इसमें शक नहीं कि उम्मत की इस्लाह की तरफ़ तो हमारी तवज्जोह अब भी है और पहले भी रही है बल्कि कभी-कभी हमारी क़ुव्वत का बड़ा हिस्सा उसने अपनी तरफ़ खींच लिया है लेकिन दावत की तरफ़ से जिस तरह हमने ग़फ़लत बरती है उसकी कोई वजह बयान नहीं की जा सकती। ग़ैर-मुस्लिमों में दावत की कुछ बिखरी हुई मिसालें पेश की जा सकती हैं, कुछ असरदार वाक़िए भी बयान किए जा सकते हैं, लेकिन जिस यकसूई के साथ इस तरफ़ तवज्जोह की जानी चाहिए थी, सही बात यह है कि मुद्दतों से वह यकसूई हमें हासिल नहीं है। यह बात बार-बार हमारे सामने आती है कि उम्मत की इस्लाह के काम में यह बात भी शामिल है कि उसे 'अल्लाह की तरफ़ दावत' और 'लोगों पर गवाही देने' के लिए तैयार किया जाए। लेकिन हमारी कोशिशें इस पहलू से कम रहती हैं, बल्कि इस तरफ़ तो बहुत बार तवज्जोह ही नहीं हो पाती।

बेहतरीन उम्मत

हम लोग आम तौर पर तक़रीरों में क़ुरआन मजीद की एक आयत को अक्सर सुनते रहते हैं कि—

> "तुम बेहतरीन उम्मत हो जिसे इनसानों (की हिदायत) के लिए निकाला गया है। तुम भलाई का हुक्म देते हो और बुराई से मना करते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो।" (3:110)

यह आयत साफ़ तौर पर बता रही है कि यह उम्मत बेहतरीन उम्मत है जो तमाम इनसानों की कामयाबी और उनके फ़ायदे के लिए वुजूद में लाई गई है। हम सबकी ज़िम्मेदारी है कि इस उम्मत को इस तरह तैयार करें कि वह बेहतरीन उम्मत बन जाए। बेहतरीन उम्मत किसी ख़ास तबक़े या गरोह या किसी ख़ास सरज़मीन के लिए नहीं, बल्कि वह तो तमाम इनसानों के लिए है। यानी इसके फ़ायदे तमाम इनसानों के लिए हैं। यह उम्मत सबके लिए ख़ैर और बरकतवाली है। हमारे उलमा ने खोल-खोलकर लिखा है। (इनके लिए देखें हमारी किताब 'मारूफ़ व मुनकर') इस आयत में यह जो कहा गया कि "तुम बेहतरीन उम्मत हो जिसे तमाम इनसानों के लिए निकाला गया है।" तो यहाँ 'तमाम इनसानों के लिए निकाला गया है' का मतलब यह है कि इस उम्मत से पूरी दुनिया को फ़ायदा पहुँचेगा। मक़सद यह है कि हमने उम्मत की तरफ़ तवज्जोह की; बहुत-से पहलुओं से की, इसके इतने पहलू हैं कि उसके बयान के लिए एक पूरा दफ़्तर चाहिए। लेकिन यह काम नहीं हो पाया कि इस उम्मत को 'लोगों को दावत देने' के लिए तैयार किया जाता। इस उम्मत में मुबल्लिग़ तैयार किए जाते, तंज़ीमें और अंजुमनें क़ायम की जातीं ताकि इस उम्मत के लोगों को इस तरह तैयार किया जाता कि वे सारी दुनिया के लिए ख़ैर और भलाई बन जाएँ और अल्लाह का दीन लोगों के सामने पेश

कर सकें। यह काम हक़ीक़त में नहीं हो पाया है। जबकि यह हमारे ऊपर फ़र्ज़ था। बहुत-से मुफ़स्सिरों ने कहा है कि क़ुरआन में यह कहने के बाद कि "तुम एक बेहतरीन उम्मत हो जिसे लोगों की भलाई के लिए निकाला गया है", कहा गया है कि "तुम लोगों को भलाई का हुक्म देते हो और बुराई से मना करते हो।" हालाँकि ईमान सबसे पहली चीज़ है। इस बात को पहले कहने की वजह यह है कि इस ज़िम्मेदारी को नुमायाँ किया जाए। क़ुरआन मजीद में बहुत-से विषय ऐसे हैं जिन्हें कभी पहले बयान किया गया है कभी बाद में। इसमें भी बहुत-सी हिकमतें छिपी हुई हैं। यहाँ भलाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने की ज़िम्मेदारी को नुमायाँ करने और उसकी अहमियत को वाज़ेह करने के लिए इसे पहले बयान किया गया है और इस सिलसिले की एक बात यह भी है कि भलाई का हुक्म देने के बारे में आलिमों ने लिखा है कि यह तौहीद की दावत भी है। यह बहुत ही अहम बात है।

भलाइयों के हुक्म से क्या मुराद है?

हम आम तौर से यह समझते हैं कि कुछ अच्छी-अच्छी बातें बताना और कुछ छोटे-मोटे मसलों की तरफ़ लोगों को तवज्जोह दिलाना भलाइयों का हुक्म है। इसमें शक नहीं कि यह भी इसमें शामिल है, लेकिन आलिमों ने साफ़ तौर से लिखा है कि भलाई के हुक्म के अन्दर तौहीद की दावत और बुराई से रोकने के अन्दर शिर्क को रद्द करने की दावत शामिल है। ज़ाहिर है कि यह काम ग़ैर-मुस्लिमों के दर्मियान होगा और इसमें पूरी उम्मत को और उसके बहुत-से तबक़ों को अपनी-अपनी हैसियत में शिरकत करनी होगी। जिन लोगों को इसका एहसास है उनकी ज़िम्मेदारी दूसरों के मुक़ाबले में बढ़ जाती है कि उम्मत इससे ग़ाफ़िल है तो उसे तवज्जोह दिलाई जाए, उसके लिए उसे तैयार किया जाए और उसे इस क़ाबिल बनाएँ कि यह उम्मत इस बड़े काम को अंजाम दे सके। इसके बग़ैर यह उम्मत अपनी ज़िम्मेदारी से छुटकारा नहीं पा सकती।

पुरानी जाहिलियत नए रूप में

अगर इस वक़्त अपने माहौल और आस-पास का जाइज़ा लिया जाए तो साफ़ दिखाई देगा कि हमारे इस देश ही की नहीं पूरी दुनिया की जो सुरते-हाल है वह कुछ उसी तरह की है जो बहुत-से ज़मानों में नबियों के आने के वक़्त होती थी। यूँ कहा जा सकता है कि पुरानी जाहिलीयत ने नया रूप-रंग इख़तियार कर लिया है। पुरानी जाहिलीयत भेस बदल कर नई जाहिलीयत की शक्ल में सामने आई है। अक़ीदे और अमल की जिन ख़राबियों का तसव्वुर जाहिलीयत के ज़माने में किया जा सकता है, वे सब ख़राबियाँ इस दौर में भी मौजूद हैं। लेकिन इस हक़ीक़त से इनकार नहीं किया जा सकता कि मौजूदा दौर में सोचने और अमल करने की आज़ादी, दावत के मौक़े और सहूलतें पहले से ज़्यादा हासिल हैं। इनसे हमें फ़ायदा उठाना चाहिए।

हमारा देश शिर्क की तरफ़ बढ़ रहा है

क़ुरआन के पढ़ने से मालूम होता है कि जिस दौर में नबी *(अलैहि.)* आए थे वह दौर शिर्क का दौर था, और शिर्क कभी-कभी ख़ुदा के इनकार की शक्ल इख़तियार कर लेता है। हमारे देश का हाल भी कुछ इससे ज़्यादा अलग नहीं है। यहाँ के आम लोग शिर्क में पड़े हुए हैं और यहाँ के ख़ास लोग, जिनके हाथों में देश की बाग-डोर है, ख़ुदा के इनकार के फ़लसफ़ों में गिरफ़तार हैं। और इसी फ़लसफ़े की बुनियाद पर यहाँ की पूरी हुकूमत का निज़ाम चल रहा है। यह देश शिर्क की तरफ़ बढ़ रहा है, ख़ुदा के इनकार की तरफ़ बढ़ रहा है। फिर अख़लाक़ी क़दरें (नैतिक मूल्य) पामाल की जा रही हैं। ये अख़लाक़ी क़दरें क़ुरआन की उन तालीमात का लाज़िमी हिस्सा हैं जिनकी तालीम मक्का से शुरू हुई और मदीना के आख़िरी दौर तक जारी रही, इन अख़लाक़ी क़दरों में से बहुत-सी वे भी हैं जिन्हें क़ुरआन ने क़ानून की हैसियत दे दी।

हम क्या करें?

सवाल यह है कि इस सूरते-हाल में हमारा क्या रवैया हो? हम क्या करें? क्या ख़ामोश बैठ जाएँ कि देश जिधर जा रहा है उसे जाने दें, जबकि हमें यक़ीन है कि इससे उसकी दुनिया ही तबाह न होगी, आख़िरत भी तबाह होगी। अब बताइए ऐसे में आपका और हमारा क्या फ़र्ज़ है? क्या एक अरब इनसानों के इस देश को और दुनिया की आबादी के सातवें हिस्से की 'दुनिया और आख़िरत' तबाह होने दें, जबकि नबी *(सल्ल.)* का उसवा और आदर्श यह है कि आप पूरी इनसानियत की फ़लाह, कामयाबी और नजात के लिए हर वक़्त और हर लम्हे बे-चैन व परेशान रहते थे। आप *(सल्ल.)* फ़रमाते हैं कि मेरी मिसाल तो ऐसी है जैसे किसी ने आग जलाई तो कीड़े और पतंगे इसमें जलने लगे और मैं उन्हें इससे बचाने की कोशिश कर रहा हूँ – यह इशारा है जहन्नम की आग की तरफ़ – आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि मैं इनसानों में से एक-एक की कमर पकड़कर उसे जहन्नम में गिरने से रोक रहा हूँ लेकिन वे हैं कि इस पर टूटे पड़ रहे हैं। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने तो यह ज़िम्मेदारी अदा कर दी। आप *(सल्ल.)* ने अपने सामने के हर इनसान को जहन्नम से बचाने की कोशिश की कि हुज्जत तमाम हो गई। नबी *(सल्ल.)* के बाद यह ज़िम्मेदारी इस उम्मत पर आती है। इससे ग़फ़लत के बाद क्या हम और आप अल्लाह की पकड़ से बच जाएँगे। कोई अन्धा कुएँ की तरफ़ बढ़ रहा हो और उसकी हलाकत यक़ीनी हो तो जो हाथ उसे बचाने के लिए आगे न बढ़े आख़िर वह हाथ किस काम का? जो आदमी हलाकत के इस मंज़र को ख़ामोशी से देखे उसके दिल के पत्थर होने की वजह से उसपर ख़ुदा का ग़ज़ब भड़क सकता है और उसकी सख़्त गिरफ़्त हो सकती है। सोचिए यहाँ एक आदमी का नहीं बल्कि पूरे एक देश का सवाल है। पूरा देश ग़लत दिशा में सफ़र कर रहा है और बहुत ही भयानक अंजाम की तरफ़ बढ़ रहा है, और हम इत्मीनान से सोए हुए हैं।

किसी को यह फ़िक्र नहीं है कि यह देश और ज़मीन ख़ुदा के अज़ाब की लपेट में न आए और ख़ुदा की रहमतों की हक़दार बन जाए।

इस दुनिया में जो आदमी जिस मक़ाम पर खड़ा है वह अपने हक़ में दलीलें रखता है। दावत का काम यह है कि कमज़ोर दलील की कमज़ोरी को वाज़ेह किया जाए। पुराने ज़माने का इनसान हालाँकि मंतिक़, फ़लसफ़े और बहुत-से पेचीदा नज़रयों और धारणाओं को नहीं जानता था लेकिन बिल्कुल नादान भी नहीं था। दुनिया के मामलों में वह बहुत होशियार था। सूरा अनकबूत में दावत की मुख़ातब बहुत-सी क़ौमों का बयान करते हुए कहा गया कि—

> "और आद व समूद को हमने हलाक किया। तुम वे जगहें देख चुके हो जहाँ वे रहते थे। उनके अमल को शैतान ने उनके लिए ख़ुशनुमा बना दिया और उन्हें सीधे रास्ते से भटका दिया, हालाँकि वे होश-गोश रखते थे।" (क़ुरआन, 29:38)

एक दूसरी जगह फ़रमाया-

> "मगर उन्होंने रास्ता देखने के बजाय अन्धा रहना ही पसन्द किया।" (क़ुरआन, 41:17)

दुनिया के मामलों में वे बाख़बर थे। वे पैग़म्बरों से बहस करते थे। उनके पास भी अपनी बातों और अपने रवैये के हक़ में दलीलें थीं। हज़रत शुऐब *(अलैहि.)* से उनकी क़ौम के लोग कहते थे—

> "क्या तेरी नमाज़ तुझे यह सिखाती है कि हम उन सारे माबूदों को छोड़ दें जिनकी पूजा हमारे बाप-दादा करते थे। या यह कि हमें अपने माल में अपनी मरज़ी के मुताबिक़ ख़र्च करने का इख़्तियार न हो।" (क़ुरआन, 11: 87)

मौजूदा दौर की ख़ूबी

यह एक सोच थी। आज यह सोच तरक़्क़ी कर गई है और ज़्यादा मज़बूत दलीलों के साथ हमारे सामने है। इसमें शक नहीं कि मौजूदा दौर में अपने ख़यालात के इज़हार की आज़ादी को इनसान का एक बुनियादी हक़ तसलीम किया जाता है। आज का इनसान बात सुनने के लिए भी तैयार है और आपको कुछ कहने का हक़ देने के लिए भी तैयार है, और यह मौजूदा दौर की ख़ूबी और अच्छाई है। यह एक तरह की उपलब्धि (Advantage) है जो आपको हासिल है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आपने जैसे ही आवाज़ दी दुनिया आपकी तरफ़ चली आएगी। बल्कि इसके लिए आपको बड़ी सख़्त मेहनत करनी पड़ेगी। मौजूदा सोच और फ़लसफ़ा (शिर्क और ख़ुदा के इनकार के) जिन पहलुओं से भरा हुआ है उन पहलुओं से इस फ़लसफ़े को ख़ाली करना पड़ेगा और जो दलीलें उसके पास हैं उन दलीलों को बे-वज़न साबित करना होगा। जिस तरह क़ुरआन ने अपने दौर में दलीलों के पहलू से मुख़ालिफ़ों को बे-बस कर दिया था और हुज्जत तमाम कर दी थी इसी तरह आपको उनकी दलीलों की कमियों को स्पष्ट और वाज़ेह करना होगा, ताकि हक़ और बातिल, झूठ और सच स्पष्ट हो जाए और हक़ के इनकार की कोई मज़बूत बुनियाद बाक़ी न रहे। क़ुरआन ने बार-बार चैलेंज किया कि अगर तुम समझते हो कि इस कायनात में एक ख़ुदा के सिवा कुछ और ख़ुदा भी हैं जो यहाँ कुछ हिस्सेदारी कर रहे हैं तो इसके हक़ में कोई दलील पेश करो।

(क़ुरआन, 27:64)

क्या आज आप नए दौर के किसी फ़लसफ़े को इस तरह चैलेंज करने की पोज़ीशन में हैं? क्या बातिल की आँखों में आँखें डालकर आप कह सकते हैं कि "ले आओ कोई दलील (अल्लाह के मुक़ाबले में) अगर तुम सच्चे हो।" (क़ुरआन, 27-64) जब आप इस तरह का चैलेंज करने की पोज़ीशन में होंगे तब दुनिया आपकी तरफ़ तवज्जोह करेगी और आपकी बात सुनेगी।

दीन मुकम्मल शक्ल में मौजूद है

एक और पहलू से भी इस्लाम की दावत का काम बड़ी तवज्जोह और मेहनत चाहता है। वह यह कि क़ुरआन मजीद 23 सालों की मुद्दत में एक तरतीब के साथ नाज़िल हुआ। मक्का में दीन के बुनियादी अक़ीदों और अख़लाक़ी बातों पर ज़ोर दिया गया। हुक्म था कि मुख़ालिफ़त पर सब्र किया जाए, माफ़ी व दरगुज़र से काम लिया जाए और दावत का काम जारी रखा जाए। फिर मदीना में जब इस्लामी रियासत क़ायम हो गई तो समाजी, सियासी और मआशी (अर्थ सम्बन्धी) हुक्म दिए गए। हुदूद और ताज़ीरात (दण्ड और दण्डसंहिताओं) का निज़ाम क़ायम हुआ। जंग और सुलह से ताल्लुक़ रखनेवाली हिदायतें दी गईं और दीन को मुकम्मल करने का एलान कर दिया गया। आज यह पूरा दीन हमारे सामने तरतीब के साथ संकलित रूप में मौजूद है। क़ुरआन मजीद अपने तमाम अल्फ़ाज़ और शब्दों के साथ ज्यों का त्यों महफ़ूज़ है। हदीसों के मजमूए मुरत्तब (संकलित) शक्ल में मौजूद हैं। इसपर क़ुरआन और हदीस की तफ़सीर करनेवालों, फ़ुक़हा और मुतकल्लिमीन ने जो ज़बरदस्त लिट्रेचर तैयार करके दे दिया है वह मौजूद है। जब आप दीन का नाम लेते हैं तो ये सारी चीज़ें बहस में आ जाती हैं। यह न समझिए कि दुनिया उन तफ़सीलों और व्याख्याओं से बेख़बर है। वह अच्छी तरह जानती है कि आपका क़ानून क्या है? और फ़ुक़हा ने क्या तफ़सीलात बयान की हैं? इस मामले में आम जानकारी के अलावा इल्म के माहिरीन और ख़ास सलाहियत रखनेवाले ग़ैर-मुस्लिम भी इस्लाम को पढ़ रहे हैं, विशेषज्ञ भी मौजूद हैं, जो ज़्यादा तफ़्सीली मालूमात रखते हैं।

एक बार पटना के एक जलसे में (जिसमें लगभग सौ लोग थे और उनमे ज़्यादातर ग़ैर-मुस्लिम थे और लोगों ने बताया कि यहाँ हर पार्टी के लोग मौजूद हैं) मैंने लगभग एक-सवा घंटा तक़रीर की। उसके बाद सवाल हुए। तक़रीर मुसलमान औरत के हुक़ूक़ के बारे

में थी। इस तक़रीर में इस पहलू पर भी रौशनी डाली गई कि इस्लाम ने किस तरह औरत को तालीम के मैदान में आगे बढ़ाया है। इसपर एक ग़ैर-मुस्लिम ने कहा कि आपका जो तालीमी निज़ाम है उसमें औरत को एक ख़ास दायरे में तालीम दी जाती है। उसमें वह घर के काम-काज के लिए एक बेहतरीन मेम्बर बन सकती है। लेकिन समाज के लिए मजमूई हैसियत से फ़ायदेमन्द साबित नहीं हो सकती। अपनी बात की ताईद में सवाल करनेवाले शख़्स ने क़ुरआन की सूरा अहज़ाब की आयत का हवाला दिया, जिसमें कहा गया है कि–

> "और याद करो अल्लाह की आयतों और उसकी हिक्मत को, जिसकी तिलावत तुम्हारे घरों में की जा रही है।" (33:34)

उस ग़ैर-मुस्लिम ने कहा कि क़ुरआन उस तालीम और हिक्मत का ज़िक्र करता है जो उसे घर के अन्दर दी जाती है। घर से बाहर के मामलों के लिए उसकी तालीम और तरबीयत का ज़िक्र नहीं है। इस एतिराज़ के जवाब में मैंने आयत का पस-मंज़र बयान किया और बताया कि क़ुरआन इसे किस तरह समाज के लिए फ़ायदेमन्द और मुफ़ीद बनाता है। इस वाक़िए का हवाला सिर्फ़ इसलिए दिया गया है ताकि अन्दाज़ा हो सके कि ग़ैर-मुस्लिम लोग भी इस्लाम को किस तरह पढ़ रहे हैं। जिन बातों की तरफ़ हमारा ज़ेहन नहीं जाता, कभी-कभी वे बातें उन्हें खटकती हैं। इस तरह दुनिया बहुत-सी चीज़ों को बहस में ला रही है।

दावत के लिए तैयारी की ज़रूरत है

आप कहेंगे कि ख़ुदा एक है। उसने हिदायत दी है और वह क़ुरआन की शक्ल में मौजूद है। एक एतिराज़ करनेवाला फ़ौरन कह सकता है कि वही क़ुरआन जिसमें चार बीवियाँ रखने की इजाज़त है, वही क़ुरआन जो ग़ुलामी को जायज़ क़रार देता है, वही क़ुरआन

जिसमें ज़िना करनेवाले को कोड़े लगाने और चोर के हाथ काटने का हुक्म दिया गया है? आप जिस किताब को सनद और प्रमाण मान रहे हैं उसमें तो बहुत-से अहकाम हैं जो अक़्ल में नहीं आते। आप पहले मुझे इसपर मुत्मइन कीजिए फिर मैं फ़ैसला करूँगा कि वह अल्लाह की तरफ़ से है या नहीं? इस तरह आपका काम और भी ज़्यादा पेचीदा हो गया है। अब दावत देनेवाले और मुबल्लिग़ के लिए ज़्यादा तैयारी की ज़रूरत है। मतलब यह कि जब आप इस्लाम का नाम लेते हैं तो किताब और सुन्नत की पूरी तालीमात और उनकी तशरीह और तफ़सीर में हमारे फ़ुक़हा ने, मुतकल्लिमीन ने और इतिहास लिखनेवालों ने जो कुछ लिखा है सब बहस में आ जाता है।

इस सूरते-हाल में दो बातें ज़रूरी हैं। एक यह कि क़ुरआन और हदीस की तालीमात बिना किसी झिझक और कमी-बेशी के ठीक-ठीक पेश की जाएँ और मौजूदा दौर में इनकी प्रासंगिकता साबित की जाए। दूसरी बात यह है कि क़ुरआन और हदीस की जो मुख़्तलिफ़ व्याख्याएँ की गई हैं उनमें जो बात सही है उसे सही और जो ग़लत है उसे ग़लत कहा जाए। उसी वक़्त यह काम अंजाम पा सकेगा।

इस्लाम : सारी समस्याओं का हल

नबी *(सल्ल.)* की तालीमात में एक चीज़ नुमायाँ नज़र आती है। वह यह कि हर नबी ने अपने दौर में फ़िक्र और अमल के फ़साद की अख़लाक़ी और समाजी ख़राबियों से अपने आप को बचाया और यह हक़ीक़त लोगों पर वाज़ेह की कि ज़िन्दगी के बहुत-से बुनियादी सवाल हैं, इनके बारे में आदमी किसी सही नतीजे पर पहुँच जाए तो उसके सारे मसले हल हो सकते हैं। उन्होंने ख़ुदा, रसूल और आख़िरत के तसव्वुर को इस हैसियत से पेश किया कि उसके मानने से ज़िन्दगी का सही रुख़ मुतैयन हो जाता है और आदमी के लिए दुनिया और आख़िरत की कामयाबी की राहें खुल

जाती हैं।

यही तरीक़ा और बात पेश करने का ढंग इस वक़्त भी इख़तियार किया जाना चाहिए। अब दुनिया अपने मसलों को इस नज़रीए से नहीं देखती जिस नज़रीए से इस्लाम देखता है और उसके फ़िक्र और नज़र का अन्दाज़ वह नहीं है जो इस्लाम ने इख़तियार किया है। आज की तालीमगाहें, लाइब्रेरियाँ, रिसर्च और तहक़ीक़ के इदारे (जहाँ लोगों के ज़हन बनते हैं और जो फ़िक्री रुख़ मुतैयन करते हैं) इनसान को इस्लाम से दूर कर रहे हैं और इस्लाम के अक़ीदों से फेरने में लगे हुए हैं। आप जिस फ़न की चाहें तालीम हासिल करें, ख़ुदा का नाम कहीं नहीं आएग। कहीं वह्य और रिसालत की ज़रूरत नहीं महसूस होगी। कहीं यह सवाल नहीं उभरेगा कि इस ज़िन्दगी के बारे में आख़िरत में जवाब देना है। इस तरह इनसान ख़ुदा, रसूल, दीन और उसकी तालीमात से दूर हुआ है।

आपको यह साबित करना होगा कि दीन और उसके अक़ीदों को नज़रअन्दाज़ करके दुनिया सही मानों में तरक़्क़ी नहीं कर सकती। ख़ुदा और उसकी तरफ़ से आई हुई हिदायतों को तसलीम किए बग़ैर जो क़दम भी उठेगा वह ग़लत दिशा में उठेगा और उसके नतीजे तबाहकुन होंगे।

बेदार हों मुस्लिम!

नबियों ने अपनी-अपनी क़ौम में अकेले अपनी आवाज़ उठाई। जिस क़ौम में पैदा हुए अकेले खड़े हुए। कभी-कभी घर और ख़ानदान भी मुख़ालिफ़ होता। सख़्त मुख़ालिफ़ माहौल में उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी अदा की। लेकिन सोचिए कि इस देश में हम दो चार या दस-बीस लोग नहीं बल्कि करोड़ों की तादाद में एक उम्मत की शकल में मौजूद हैं। कितना बड़ा हादसा है कि पूरी की पूरी उम्मत अपनी ज़िम्मेदारी से ग़ाफ़िल है।

इस बात पर हम ख़ुशी महसूस करते हैं, बल्कि कभी-कभी फ़ख़्र ज़ाहिर करते हैं कि हम यहाँ पन्दरह करोड़ या बीस करोड़ की तादाद में मौजूद हैं लेकिन यह नहीं सोचते कि करोड़ों की यह उम्मत जिस मक़सद के लिए वुजूद में आई है वह पूरा हो रहा है या नहीं। हक़ की गवाही की जो ज़िम्मेदारी अल्लाह ने उम्मत पर डाली है उसका तक़ाज़ा है कि वह इस काम को वही अहमियत दे जो उसे दी गई है। इसपर संजीदगी से सोचे, उसे अपने ग़ौर और फ़िक्र का विषय बनाए और इसके लिए मुमकिना तदबीरें इख़तियार करे। इस काम को आज और कल पर टाला नहीं जा सकता। अगर अब तक हमने इसे टाला और नज़रअन्दाज़ किया तो यह हमारी ग़लती थी। ग़लती के बाद इस्लाह की फ़िक्र होनी चाहिए, कोताही हुई है, और यक़ीनन हुई है, तो इसकी भरपाई की कोशिश होनी चाहिए।

☆☆☆